टिप्पणी

16

वेदान्त दर्शन-2

प्रस्तावना

भारतीय दर्शन परम्परा में वेदान्त दर्शन मूर्धन्य स्थान विभूषित है। वह यह वेदान्त दर्शन प्रस्थान त्रयी को आश्रित करके शोभायमान है। शंकर, रामानुज, मध्वाचार्य इत्यादि द्वारा वेदान्त विद्या के आचार-प्रचार के लिए भाष्य रचकर महान उपकार किया गया। आचार्यो के अनुभव-भेद से उनके भाष्य-व्याख्या में भी मतभेद दिखते हैं। अत: अद्वितीय वेदान्त दर्शन, विशिष्टाद्वैत, द्वैत आदि बहुत से भेद द्वारा व्याख्यायित हैं। उसमें रामानुजाचार्य ने स्वानुभव, अनुगुण वेदान्त साहित्य विशिष्टाद्वैत रूप में व्याख्यायित किया है। मध्वाचार्य ने द्वैतसिद्धान्त अनुगुण प्रस्थानत्रयी की व्याख्या के लिए द्वैत वेदान्त दर्शन का वर्धन किया है। इसी प्रकार अन्य आचार्यो ने स्वानुभव की परीक्षा करने हेतु तत्व-साक्षात्कारानुगुण वेदान्त विद्या को बहुत प्रकार से व्याख्यायित किया। अब इस पाठ में रामानुजाचार्य प्रवर्धित विशिष्टाद्वैत दर्शन, निम्बार्काचार्य का द्वैताद्वैत दर्शन, मध्वाचार्य प्रवर्तित द्वैतवेदान्त दर्शन, श्रीकण्ठ आचार्य का शैवविशिष्टाद्वैत दर्शन और श्रीपति का वीरशैवविशिष्टाद्वैत दर्शन निरूपित है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे:

- विशिष्टाद्वैत दर्शन की आचार्य परम्परा जान पाने में;
- विशिष्टाद्वैत दर्शन के तत्व त्रय-विचार को जान पाने में;
- विशिष्टाद्वैत दर्शन का जीवतत्व जान पाने में;
- शैवविशिष्टद्वैत दर्शन में जगत्-स्वरूप जान पाने में;

- शैवविशिष्टद्वैत दर्शन में मोक्ष स्वरूप जान पाने में;
- विशिष्टाद्वैत प्रक्रिया में प्रमाण-त्रय जान पाने में;
- शैवविशिष्टाद्वैत दर्शन में जीव-स्वरूप जान पाने में;
- द्वैताद्वैत दर्शन में मोक्षोपाय ज्ञात कर पाने में;
- द्वैत वेदान्त दर्शन की आचार्य परम्परा को जान पाने में;
- द्वैत दर्शन के अनुसार प्रमाण-विचार जान पाने में;
- द्वैत दर्शन के अनुसार बन्ध-मोक्ष का विचार जान पाने में;
- द्वैत दर्शन के अनुसार मोक्षोपाय (भक्ति) जान पाने में;
- द्वैताद्वैत दर्शन में ब्रह्म-स्वरूप जान पाने में;
- वीरशैवविशिष्टाद्वैत दर्शन में मोक्ष का स्वरूप जान पाने में;
- वीरशैवविशिष्यद्वैत दर्शन का सार जान पाने में;

16.1 वैष्णव दार्शनिक परम्परा

मुख्य रूप से प्राचीन-वैष्णव दार्शनिक सम्प्रदाय चार भागों में विभक्त हैं-

> **रामानुज श्रीः स्वीचक्रे मध्वाचार्य चतुर्मुखः।**
> **श्रीविष्णुस्वामिनं रूद्रो निम्बादित्यं चतुः सनः। (पद्मपुराण)**

सम्प्रदाय	आचार्य	म्त
श्री सम्प्रदाय (लक्ष्मी सम्प्रदाय)	रामानुजाचार्य	विशिष्टाद्वैत वेदान्त दर्शन
ब्रह्म सम्प्रदाय	मध्वाचार्य	द्वैतवेदान्त दर्शन
रूद्र सम्प्रदाय	विष्णु स्वामी/वल्लभाचार्य	शुद्धाद्वैत
सनक सम्प्रदाय (हंस सम्प्रदाय)	निम्बार्काचार्य	द्वैताद्वैत वेदान्त दर्शन

16.2 रामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैत दर्शन

16.2.1 विशिष्टाद्वैत दर्शन की आचार्य परम्परा

वैष्णव वेदान्त दर्शन में श्रीसम्प्रदाय प्रवर्तित विशिष्टाद्वैत वेदान्त दर्शन प्रसिद्ध है। श्रीसम्प्रदाय

टिप्पणी

ही लक्ष्मी सम्प्रदाय के नाम से भी विख्यात है। इस सम्प्रदाय में नारायण ही परम आचार्य हैं। नारायण के तत्वोपदेश में सर्वप्रथम लक्ष्मी ने लोक को उपदेश दिया, ऐसा जाना जाता है। इस दर्शन की आचार्य परम्परा में प्राचीन और अर्वाचीन आचार्य, यह विभाग किया जा सकता है। विश्वसेन-शठकोप-बोधायन से आरम्भ होकर नाथमुनि पर्यन्त प्राचीन आचार्य परम्परा में निर्दिष्ट हैं। नाथमुनि से आरम्भ होकर रंगरामानुज-वेदान्तदेशिकाचार्य पर्यन्त अर्वाचीन आचार्य हैं। रामानुजाचार्य के द्वारा वेदार्थ संग्रह में विशिष्टाद्वैत दर्शन की आचार्यपरम्परा इस प्रकार प्रदर्शित है-बोधायन-टच-द्रमिड़-गुहदेव- कपर्दिभारूचि इत्यादि विगीत विशिष्ट परिगृहीत पुरातन वेद वेदान्त-व्याख्यान सुव्यक्तार्थ श्रुति आदि में निदर्शित यह पन्थ है। विशिष्टाद्वैत वेदान्त दर्शन का निरूपण बोधायन आचार्य के ब्रह्मसूत्रवृत्ति का अनुसरण करके किया गया है, ऐसी श्रीभाष्य के आदि में रामानुजाचार्य के द्वारा प्रतिज्ञा की गई हैं। यथा-भगवद्बोधायनकृतां ब्रह्मसूत्रवृत्तिं पूर्वाचार्याः संचिक्षिपुः। अतः तन्मतानुसारेण सूत्रारक्षाणि व्याख्यास्यन्ते। (श्रीभाष्य 1/1/1)

अतः आचार्य परम्परा में भगवान बोधायन विशिष्ट स्थान अलंकृत करते हैं। और इस प्रकार विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय के प्राचीन और अर्वाचीन आचार्य स्मरण किये जाते हैं, यथा ''नारायणः-लक्ष्मीः-विष्वक्सेनः-शठकोपः-बोपदेवः- नाथमुनिः-पुण्डरीकाक्षः-राममिश्रः-यामुनः-पूर्णाचार्यः-रामानुजः-रन्नरामानुज- वेदान्तदेशिकः''।

आज्ञवार अभिधेय योगियों ने तमिल भाषा में विशिष्टाद्वैत दर्शन नाथमुनि के काल से पूर्व निरूपित किया। अतः इस सम्प्रदाय में भक्ति मार्ग स्थानों का आज्ञवार अभिधेय योगियों का विशिष्ट स्थान है। इस प्रकार आलवार योगियों, अन्य नाथमुनि इत्यादि का स्थूल परिचय नीचे निर्दिष्ट है।

16.2.2 द्वादश (बारह) आलवार पुरूष

दक्षित भारत में आलवार नामक योगीजन भागवत सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे। ये भक्तिमार्ग के पोषक नित्यसूरि प्रसिद्ध है। इनके द्वारा विशिष्टाद्वैत दर्शन तमिल भाषा में उपदिष्ट हैं। इनके उपदेश दिव्यप्रबन्ध (द्रविड़वेद) कहलाते हैं। बारह आलवार पुरूष सम्प्रदाय में उल्लिखित हैं। इन आलवार योगियों का जन्म-देश भागवत में निर्दिष्ट है। यथा-

कृतादिषु प्रजा राजन् कलाविच्छन्ति सम्भवम्
कलौ खलु भविष्यन्ति नारायणपरायणाः।

क्वचित् क्वचिन्महाराज द्रविडेषु च भूरिशः।
ताम्रपर्णी नदी यत्र कृतमाला पयस्विनी।। (भागवत 11.5.38-40)

इन बारह आलवार पुरूषों के तमिल नाम के साथ संस्कृत नाम भी नीचे निर्दिष्ट हैं।

टिप्पणी

संख्या	तमिल नाम	संस्कृत नाम
1.	पोयगै आलवार	सरयोगी
2.	पोदत्तालवार	-
3.	पेय आलवार	महद्योगी (भक्तिसार)
4.	नाम्मालवार	शठकोपमुनि
5.	कुलशेखर आलवार	कुलशेखर
6.	पेरिय आलवार	विष्णुचित्त
7.	अण्डाल	गोदा
8.	तेण्डरडिप्पोडि आलवार	विप्रनारायण
9.	तिरूप्पन आलवार	मुनिवाहन (योगिवाहन) लोकसारंगमुनि
10.	तिरूमर्ग आलवार	परकाल (750)
11.	मधुरकवि	मधुरकवि
12.	तिरूमलिशैपिरान् अलवार	-

16.2.3 विशिष्टाद्वैत परम्परा में ग्रन्थ और उनका कर्तृपरिचय

क्र.सं.	नाम	काल	विरचित ग्रन्थ	विशेष
1.	नाथमुनि	823 (ईस्वी)	योगरहस्य (अनुपलब्ध) नयतत्व (अनुपलब्ध)	(दिव्यप्रबन्ध-संग्रहचतु: सहस्रगीति (4000)
2.	यामुनाचार्य	917-1042 (ईस्वी)	आगमप्रामाण्य, महापुरुषनिर्णय (अनुलब्ध), आत्मसिद्धि, ईश्वरसिद्धि, संवित्सिद्धि, गीतार्थसंग्रह	नाथमुनिवर्य के प्रपौत्र। इनके शिष्य महापूर्ण-गौष्ठिपूर्ण
3.	रामानुजाचार्य	1017-1137 (ईस्वी)	श्रीभाष्य, गीताभाष्य, वैदार्थसंग्रह, वेदान्तसार, वेदान्तदीप, शरणागति-गद्य, श्रीरंगगद्य, वैकुठगद्य	श्रीवात्सायमिश्र-प्रिय शिष्य
4.	श्रीवात्सायमिश्र (कूरेश)	10-11 (ईस्वी)	श्रीस्तव, वैकुण्डस्तव, अतिमानुषस्तव, सुन्दरबाहुस्तव, वरदराजस्तव	श्रीभाष्य के लेखक

टिप्पणी

5.	वात्स्यवरदाचार्य	13 (ईशा के उत्तर)	प्रपन्नपारिजात, प्रमेयमाला, प्रमेयसार, ज्ञानसार, तत्वसार, परतत्वनिर्णय, श्रीभाष्यसंग्रह	इनके प्रिय शिष्य आत्रेय समानुज सुदर्शभट्टारक
6.	सुदर्शनभट्टारक	1350 (ईशूत्तर)	श्रुतप्रकाशिका (श्रीभाष्य व्याख्या), तात्पर्यदीपिका, श्रुतदीपिका, शुकपक्षीय (भागवत् व्याख्या), श्रणागतिगद्य व्याख्या	-
7.	वेंकटनाथाचार्य (वेदान्तदेशिक)	1268-1369 (ईसा के बाद)	तत्वटीका (श्रीभष्य व्याख्या), तात्पर्यचन्दिका (गीताभाष्य व्याख्या), न्यायपरिशुद्धि, सेश्वरमीमांसा, सर्वार्थसिद्धि व्याख्योपेत, तत्वमुक्ताकलाप, अधिकरणसारावली, शतदूषणी, यादवाभ्युदय, हंससंदेश, पादुकासहस्र, संकल्पसूर्योदय	तमिल भाषा में अनेक प्रबन्ध विरचित हैं।
8.	महाचार्य	16 (ईसा के पश्चात्)	चण्डमारूत (शतदूषणी व्याख्या), उपनिषत्मन्नलदपिका तात्पर्यप्रकाशिका, विजयपञ्चक, अविद्या-परिकर-पाराशर्य-ब्रह्मविद्या-परिकर-पाराशर्य-ब्रह्मविद्या-सुद्विद्या	
9.	रंगरामानुजाचार्य	16 (ईसा के पश्चात्)	उपनिषद्भाष्य	-
10.	वाधूलश्रीनिवासाचार्य	17 (ईसा के पश्चात्)	यतीन्द्रमतदीपिका, तत्वमार्तांझड	महाचार्य के शिष्य

16.2.4 प्रमाण विचार

प्रमा का करण प्रमाण कहलाता है। सभी ज्ञेय पदार्थ का ज्ञान प्रमाण के अधीन होता है। प्रमाण ही ज्ञान का द्वार है। विशिष्टाद्वैत दर्शन में तीन प्रमाण स्वीकार किये जाते हैं। वे हैं- प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द। इन प्रमाणों का स्थूल परिचय नीचे दिया जा रहा है।

1. प्रत्यक्ष-

साक्षात्कारिप्रमाकरणं प्रत्यक्षम्, ऐसा कहा जाता है। प्रत्यक्ष प्रमा के प्रति असाधारण कारण ही साक्षात्कारी प्रमा का करण है। वहाँ प्रत्यक्ष प्रमा के उत्पत्ति के प्रकार इस प्रकार होते हैं।

''आत्मा मनसा संयुज्यते। मन इन्द्रियेण, इन्द्रियमर्थेन इति''। विशिष्टाद्वैत दर्शन-प्रक्रिया के अनुसार सभी इन्द्रियों के प्राप्य प्रकाशकारित्व को स्वीकार किया जाता है। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ भी विषय सम्बन्ध तथा उस विषय का ज्ञान उत्पन्न करती हैं। प्राप्य प्रकाशकारित्व इन्द्रिय सन्निकट विषय का द्योतकत्व है। यह प्रत्यक्ष दो प्रकार का है। सविकल्पक प्रत्यक्ष और निविकल्पक प्रत्यक्ष। निर्विकल्पक प्रत्यक्ष द्रव्यगत गुण संस्थान आदि को अविषयीकृत प्राथमिक पिण्डमात्र ग्रहण (द्रव्यमात्र ग्रहण) है। जो द्रव्यगत गुणसंस्थान आदि को विषयीकृत करता है, वह सविकल्पक प्रत्यक्ष कहा जाता है।

इस दर्शन में सभी ज्ञान यथार्थ है, ऐसा निर्णय है। ज्ञान के अयथार्थत्व को विशिष्टाद्वैत प्रक्रिया में अनुमति नहीं है। ''यथार्थ सर्वविज्ञानमिति वेदविदां मतम्' (श्रीभाष्य 1.1.1), ऐसा रामानुजाचार्य ज्ञान के यथार्थत्व को मानते हैं। इस दर्शन में यथार्थ ख्याति स्वीकृत है। यथार्थख्याति अल्प (सत्ख्याति)

अक्षरों के द्वारा नीचे व्याख्यात है।

यथार्थख्याति/सत्ख्याति

वेदोक्त पञ्चीकरण प्रक्रिया द्वारा सभी वस्तु में सभी वस्तु अनुगत है। अतः 'इदं रजतम्'', यहाँ भी शुक्ति में रजतांश होता है। इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष होने पर शुक्तिगत रजतांश गृहीत होता है, उससे व्यवहार ''इदं रजतम्'' होता है। ज्ञान का विषय यदि बाधित होता है तो उस ज्ञानत्व का भी भ्रम रूपत्व बाधित हो। किन्तु ज्ञान का विषय ''रजत'' तो पञ्चीकरण प्रक्रिया के द्वारा होता ही है। अतः ''इदं रजतमिति'' यह ज्ञान भी यथार्थ है, ज्ञान के विषय के सत्य होने के कारण।

प्रश्न- उत्तरकाल में 'नेदं राजतमिति'' (यह रजत नहीं है) उत्पद्यमान ज्ञान है, पूर्वोत्पन्न ''इदं रजतमिति'' ज्ञान बाधित होता है?

समाधान- यह रजत है, इस ज्ञान से वस्तुतः शुक्ति में विद्यमान अल्पांश का ही ग्रहण किया गया है। उसके उत्तरकाल में शुक्ति में विद्यमान अधिकांश ही गृहीत होता है। इससे उत्तरकाल में उत्पद्यमान 'नेदं रजतमिति' ज्ञान है, पूर्वका ''इदं रजतमिति'' यह ज्ञान जन्य व्यवहार का बाधक है, ज्ञानबाधक नहीं है। अतः वस्तु में अल्पांश ग्रहण से जो व्यवहार में विद्यमान-अधिकांशग्रहण द्वारा बोध होता है। अतः अल्पांश ग्रहण से उत्पन्न व्यवहार ही भ्रम है, वही बाधित है। इस प्रकार सभी ज्ञान यथार्थ है, ऐसा मत है।

2. अनुमान-

''अनुमितेः करणम् अनुमानम्। धूम-वह्नि के व्याप्य-व्यापक भाव को जानकार पर्वत पर वह्नि रूप प्रमिति ही अनुमिति कहलाती है। उसके समान वह्नि रूप अनुमिति का करण ही अनुमान कहा जाता है। यहाँ अविनाभाव सम्बन्ध ही व्याप्ति है। न्यून देशवर्ती व्याप्यत्व तथा अधिक देशवर्ती व्यापकत्व है, ऐसा ज्ञेय है। अनुमान प्रक्रिया में प्रतिज्ञा-हेतु-उदाहरण-उपनय-निगमन नामक पाँच अवयव हैं। ये पाँच अवयव नियम से अनुमिति की उत्पत्ति में अपेक्षित नहीं होते हैं। अनुमिति-ज्ञान की उत्पत्ति में पाँच अवयव भी अपेक्षित है, ऐसी विशिष्टाद्वैत प्रक्रिया होती है।

3. शब्द-

अनाप्तैः अनुक्तं वाक्यं प्रमाणशब्देन अभिधीयते। अन्य शब्द अप्रमाण कहलाता है। वेद अनाप्त द्वारा प्रोक्त नहीं होते हैं। और पुनः पौरूषेय ग्रन्थ इतिहास, पुराण आदि भी अनाप्त द्वारा अनुक्त ही होते हैं। अतः पौरूषेयापौरूषेयरूप वेद-इतिहास, पुराण आदि इस दर्शन में शब्द प्रमाण के रूप में स्वीकार किये जाते हैं। महाभारत में आये हुए पञ्चरत्न को शब्द प्रमाण के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। और पञ्चरत्न हैं-

''गीतासहस्रनामानि स्तवराजो ह्यनुस्मृतिः।
गजेन्द्रमोक्षणं चैव पञ्चरत्नानि भारते॥''

भागवत्-विष्णु पुराणों में विशिष्टाद्वैत परम्परा का परम प्रामाण्य है। आगमों में पाञ्चरात्र संहिता और पौष्कर संहिता प्रमाण रूप से स्वीकृत हैं। आलवार योगियों के द्वारा तमिल भाषा में विरचित दिव्य प्रबन्ध भी प्रमाण की कोटि में अन्तर्निहित है।

16.2.5 तत्व-त्रय विचार

''भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा'' (श्वे. उ. 1.12), इस श्रुति द्वारा विशिष्टाद्वैत वेदान्त में विशेष रूप से तत्व त्रय का चिन्तन विहित है। तत्व तीन हैं। चित् (जीव), अचित् (प्रकृति/जगत्), ओर चित्-अचित् विशिष्ट ईश्वर (ब्रह्म)। उसमें शेष द्वार चिदचित्त का परमात्मा में आश्रय है। परमात्मा से चिदचित्त तत्व का आपृथग्भूत सम्बन्ध अंगा अंगी भाव स्वीकार किया जाता है। यह तत्व-त्रय सत्य रूप है। उनमें चित्तत्व पर विचार किया जा रहा है।

चित् तत्व (जीव)

परमात्मा का शरीर स्थानीय (अंशरूप) चित् तत्व ही जीव है। उक्त है- अणुत्वे सति चेतनत्वं, स्वतः शेषत्वे सति चेतनत्वम्' (यतीन्द्रमादीपिका)। जीव चेतन स्वभाव का होता है। यह स्वयं प्रकाश रूप में विद्यमान होता है। जीव का स्वाभाविक कर्तृत्व स्वीकार किया जाता है। विशिष्टाद्वैत दर्शन की प्रक्रिया में जीव अणुरूप है। इसीलिए कहा गया

है- ऐषोऽणुरात्मा (मु. उ. 3.1.9)। जीव को ज्ञान स्वरूप में स्वीकार किया जाता है। जीव का परमात्मा में अधीनत्व और अंशत्व निरूपित है। वह जीव अस्वतन्त्र कर्म के अनुसार संसार-चक्र में सञ्चरण करता है। मुक्तात्मा के जीव का ज्ञान स्वरूप अन्य मुक्तात्माओं द्वारा समान रूप से स्वीकार किया जाता है। इस दर्शन में जीव के तीन प्रकार का निरूपण है।

यथा-

1. बद्ध- अनादि कर्मपाशों के द्वारा बद्ध जीव देव, मनुष्य आदि से भिन्न होते हैं।
2. मुक्त- जो कर्म-पाश के नाश के लिये प्रकृति सम्बन्ध से युक्त ईश्वर सायुज्य ही प्राप्त करते है, वे मुक्त हैं।
3. नित्य- नित्यों का कभी भी कर्मबन्ध अथवा प्रकृतिसम्बन्ध नहीं होता है।

नित्य बद्ध नहीं और उनकी मुक्ति की अपेक्षा भी नहीं होती है। ईश्वर की आज्ञा से नित्य-विभूति स्थान वैकुण्ठ में भगवान की नित्य सेवा में रत होते हैं।

> **''शुष, गरूड़ विष्वक्सेनः, द्वादश आलवार पुरूषाः''**
> **नितयसूरि, यह परम्परा में है।**

अचित् तत्व (प्रकृति/जगत्)

परमात्मा शेष रूप से अचित् रूप में माना जाता है। यह अचित् तत्व प्रकृति तत्व के रूप में व्यवहृत है। अचित् तत्व जड़ रूप है, ऐसा सिद्धान्त है। यह परमात्मा अङ्ग और अस्वतन्त्र होता है। जीव का भोग्य होने से ही अस्वतन्त्र रूप में व्यवहार होता है। अचित् तत्व त्रिगुणात्मक होता है। त्रिगुण सत्व, रजस् और तमस् होते हैं। यह जड़ रूप अचित् तत्व सत्य है, ऐसा विशिष्टाद्वैत दर्शन का सिद्धान्त है।

ईश्वर (ब्रह्म)

चित्-अचित् विशिष्ट अद्वैत तत्व ही ईश्वर कहलाता है। परमात्मा में चिदचित्त तत्व अपृथक-विशेषण सम्बन्ध से (अङ्ग-अङ्गि भाव से) नित्य होता है। ईश्वर नित्य, अनन्त, कल्याण गुण गण होता है। जड़त्व, अनित्यत्व अदि हेय गुण वर्जित होने से निर्गुण यह परमात्मा निर्विशेष होता है, ऐसा विशिटाद्वैत प्रक्रिया विद्यमान है। उपनिषद् में विद्यमान परमात्मा का निर्गुण बोधक वाक्यों के हेयगुणाभाव बोधकता द्वारा प्रामाण्य है। परमात्मा सदैव सविशेष है। उसकी सृष्टि भी सविशेष है, ऐसा विशिष्टाद्वैतवादी मानते हैं। परमात्मा का अभिन्न निमित उपादानरूप जगत्कारणत्व स्वीकार किया जाता है। अर्थात् परमात्मा जगत्कार्य के प्रति उपादान कारण होते हुए निमित्त कारण भी होता है, यह सिद्धान्त है। परमात्मा के सर्वत्र स्वतन्त्र होने से लक्ष्मी स्वेच्छा से परमात्माधीन होती है, ऐसा उनका मानना है। भगवान् ही अनुग्रह शक्ति, करूणा शक्ति, स्वतन्त्र और नित्य, यह

विशिष्टाद्वैत दार्शनिक निरूपित करते हैं। ईश्वर सर्वात्मक, सर्वानुगत, सर्वव्यापक और देश, काल वस्तु-परिच्छेद के अभाव से अनन्त है, ऐसा विशिष्टाद्वैत प्रक्रिया में सिद्ध होता है। भगवान् के ज्ञान, शक्ति और सत्यानन्द आदि स्वरूर्प धर्म हैं।

16.2.6 बन्ध-मोक्ष विचार

अनादि, कर्म, वासना के द्वारा जीव का स्वरूप आवृत्त होता है। जीव का कर्म-निमित्त से प्रकृति-सम्बन्ध से ही बन्ध होता है। बन्ध परमात्मा के अंश का विस्मरण ही है। बद्ध जीव के कर्म-बन्धन नाश से प्रकृति सम्बन्ध का विरह होता है। प्रकृति-सम्बन्ध के वियोग से स्वरूप-अवस्थान ही कैवल्य है, ऐसा विशिष्टाद्वैतवेदान्ती निरूपित करते हैं। कैवल्य क्या है तो कहते हैं, ज्ञान योग द्वारा चित् मात्र के स्वरूपावगति है। कैवल्य परमार्थ नहीं किन्तु ईश्वर सायुज्य ही मोक्ष है, वही परम पुरूषार्थ है। सालोक्य-सामीप्य-सारूप्य-सायुज्य में ईश्वर-सायुज्य ही मोक्ष है, अन्यत्र मोक्ष शब्द गौण है। तो उक्त है- ''सालोक्याद्याः प्रभेदाः सायुज्यस्यैव तत्वात् तदितरविषये मोक्षशब्दस्तु भाक्तः'' (तत्वमुक्ताकलापः) इस दर्शन में युक्तात्मा-परमात्मा के आनन्दानुभव में तारतम्य स्वीकार नहीं है। सायुज्य परम मुक्ति में मुक्त भगवान के शेषरूपत्व को प्राप्त कर उनकी सेवा में रत (संलग्न) होते हैं। विशिष्टाद्वैत परम्परा में ईश्वर सायुज्य ही मुक्ति है। इनके द्वारा जीवन्मुक्ति स्वीकृत नहीं है।

16.2.7 मोक्षोपाय विचार

बद्ध जीव के मोक्ष के लिए प्रकृष्ट उपकारक ही मोक्ष का उपाय है। वह दो प्रकार का है- सिद्धोपाय और साध्योपाय। परमात्मा का अनुग्रह ही जीव के मोक्ष-प्राप्ति में सिद्धोपाय कहलाता है। अतः नित्य सिद्ध ईश्वर ही सिद्धोपाय है। साध्योपाय कर्मयोग-ज्ञानयोग-भक्तियोग और प्रतिपत्ति है। विशिष्टाद्वैतदर्शन के अनुसार भक्ति और प्रतिपत्ति प्रधान रूप से मोक्षोपाय है। कहा गया है- ''भक्ति प्रपत्तिभ्यां प्रपन्न ईश्वर एवं मोक्ष ददाति। अतस्तयोरेव मोक्षोपायत्वम्'' - (यतीन्द्रमतदीपिका)/कर्म योग और ज्ञान योग में अविच्छिन्न भगवद् भक्ति की व्युत्पत्ति मुख्य रूप से मोक्षोपायत्व है। ज्ञानयोग से जीव की स्वरूपावगति, जड़ प्रकृति से आत्मा का भेद और परमात्मा का शेषत्व ये विषय ज्ञात होते हैं। ईश्वर के शेषत्व द्वारा अपनी स्वरूपावगति ही ज्ञानयोग कहलाती है।

भक्ति-

भागवत्प्रीति रूप ज्ञान ही भक्ति है। निष्कल्मष-निष्कारण-प्रीतिरूप ज्ञानसन्तति भक्ति है, ऐसा व्याख्यायित है। कहा भी गया है-

> **''भक्तिः मुक्तेरूपायः श्रुतिशतविहितः सा च धीः प्रीतिरूपा:।''**
> **(तत्वमुक्ताकलापः)**

> **''महनीयविषये प्रीतिः भक्तिः, प्रीत्यादयश्च ज्ञानविशेषाः'' (सर्वार्थसिद्धि व्याख्या)**

प्रपत्ति-

विशिष्टाद्वैत दर्शन में प्रपत्ति स्वतन्त्र रूप से मोक्षोपाय के रूप में निरूपित है। न्यास, शरणागति, आत्म समर्पण और आत्मनिक्षेप शब्द तात्पर्य से प्रपत्ति रूप अर्थ के लिए प्रपञ्च करते हैं।

इस प्रपत्ति के पाँच अंग होते हैं। यथा-

1. अभिगमन- जप आदि द्वारा भगवदुसमर्पण।
2. उपादान- पूजा-द्रव्य संग्रह
3. इज्या- विष्णु पूजा
4. स्वाध्याय- आगम का अध्ययन
5. योग- अष्टाङ्ग योग का अनुष्ठान

मोक्ष अथवा मोक्षसाधन के सम्पादन में ''अहम् समर्थः'' ऐसा निश्चित कर परिपूर्ण श्रद्धा द्वारा भगवान में शरणागति ही प्रपत्ति कहलाती है। कहा गया है-

> **''अनन्यसाध्ये स्वाभीष्टे महाविश्वासपूर्वकम्।**
> **तदेकोपायतायां च प्रपत्तिः शरणागतिः।'' (प्रपन्नपारिजात)**

विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय के अनुसार भक्ति मार्ग में वैसे त्रैवर्णिकों का ही अधिकार है। किन्तु प्रपत्ति मार्ग में तारतम्य के बिना सभी का अधिकार निरूपित है। ''प्रपत्तिः भक्तिमार्गात् भिद्यते।'' भक्ति तो प्रारब्ध कर्म को छोड़कर अन्य सभी कर्मों का नाश करती है। प्रारब्ध का भोग द्वारा ही क्षय होता है। किन्तु प्रपत्ति सभी प्रकार के कर्म के साथ प्रारब्ध का भी नाश करने के कारण से आशुमोक्षकारिणी कहलाती है।

16.3 निम्बार्क आचार्य का द्वैताद्वैत दर्शन

16.3.1 आचार्य का जीवन-वृतान्त

भक्ति वेदान्त के आचार्य निम्बार्क हैं। वेदान्त पारिजात सौरभ नामक भाष्य के प्रणेता निम्बार्काचार्य हैं। इस आचार्य का अपर नाम निम्बादित्य और नियमानन्दाचार्य है। सनत्कुमार के शिष्य नारदमुनि के शिष्य निम्बार्क है। रामानुज से परवर्ती कालीन निम्बार्काचार्य हैं। जि.आर. भाण्डारकार के मत में 1162, इसमें पाँचवें शतक में निम्बार्क हैं। निम्बार्क तेलेगु प्रदेशीय थे। पिता जगन्नाथ और माता सरस्वती थे। निम्बार्काचार्य के नाम के अनुसार

टिप्पणी

कालान्तर में जन्म स्थान का नाम निम्बापुर हुआ। अब निम्बापुर का नाम नाईडुपत्तनम है। एक कथा प्रचलित है- कोई भिक्षार्थी निम्बार्काचार्य के घर आए। भिक्षार्थी ने कहा कि सूर्यास्त होने पर भिक्षा स्वीकार नहीं करता हूँ। आचार्य के घर में भोजन नहीं था, साधन भी नहीं था। जब तक भोजन बना तब तक सूर्य अस्त हो गया, इससे निम्बार्काचार्य ने मन में कष्ट अनुभूत करके भगवान से प्रार्थना की। तब भगवान सुदर्शन चक्र स्थापित हुए। वह चक्र सूर्य के समान प्रकाशित था। उसे देखकर भिक्षार्थी ने भोजन किया। अतः आचार्य का अपर नाम नियमानन्द है। आचार्य कृष्ण भक्त थे। आचार्य द्वारा जीवन का अधिक समय मथुरा में यापन किया गया। इस प्रकार आचार्य का जीवनवृतान्त है।

16.3.2 द्वैताद्वैतसिद्धान्त का परिचय

द्वैताद्वैत के प्रवर्तक निम्बार्काचार्य हैं। यह वाद अंशरूप में भेदाभेदवाद भी कहा जा सकता है। निम्बार्कानुसारी कहते हैं कि अंश-अंशी सम्बन्ध, भेदाभेद सम्बन्ध और द्वैताद्वैत सम्बन्ध समानार्थक हैं। षड्ग वेद, धर्म, मीमांसा के अध्ययन के पश्चात् वैराग्यवान भगवान के प्रसाद के आकांक्षी गुरू भक्त मुमुक्षु इस शास्त्र के अधिकारी हैं। इस सिद्धान्त में भक्त का उत्तम स्थान होता है। यहाँ दो तत्व होते हैं। स्वतन्त्र और अस्वतन्त्र। स्वतन्त्र ब्रह्म है। अस्वतन्त्र के दो भाग हैं- जीव और जड़। जड़ के तीन भाग हैं- अप्राकृत, प्राकृत और काल। द्वैताद्वैतवादियों के द्वारा जगत् और ब्रह्म का स्वाभाविक भेदाभेद सम्बन्ध स्वीकृत है। जीव-ब्रह्म का भेदाभेद जल-तरंग के समान होता है। भेदाभेद प्रतिपादक श्रुतियाँ हैं- ''यतो वै इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत्प्रयनि अभिसंविशन्ति च (तैत्तिरीयोपनिषद्), ''सर्व खल्विदं ब्रह्म (छान्दोग्योपनिषद्) इत्यादि। ये त्रिवृत्करण स्वीकार करते हैं। इनके मत में जीव कर्ता, भोक्ता, नित्य, चैतन्य स्वरूप अणु परिमाण और ज्ञान स्वरूप होता है। जीव ब्रह्म का अंश विशेष है, ऐसा ये स्वीकार करते हैं। जीव की चित् रूपता का विस्मरण ही अविद्या है, ऐसा इनका सिद्धान्त है। कर्म द्वारा चित्तशुद्धि, चित्तशुद्धि द्वारा अविद्या का निवारण होता है। उससे ज्ञान के प्रति कर्म के सहकारी कारणत्व को ये स्वीकार करते हैं। ये भक्ति, ध्यान, उपासना, यज्ञ आदि कर्म को ज्ञान साध न के रूप में स्वीकार करते हैं। इनके मत में जीव का चिदात्मा में अवस्थान ही मुक्ति है। प्रारब्ध कर्म का भोग से ही क्षय होता है। जीव मुक्त अवस्था में भी ब्रह्म के अंश रूप में रहता है। जीवों का कर्मफलदाता ब्रह्म ही है। परमेश्वर के छः ऐश्वर्य हैं। ज्ञान, शक्ति, बल, वीर्य, तेज और ऐश्वर्य। यहाँ तीन अवतार हैं। गुणावतार, पुरूषावतार और लीलावतार। ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीन गुणावतार हैं। स्वरूपावतार, आवेशावतार और शंक्यांशावतार लीलावतार के तीन भाग हैं। और भी, इस सिद्धान्त में राम, नृसिंह और कृष्ण पूर्णावतार रूप में प्रसिद्ध हैं। मत्स्य, वामन, कुर्म, वराह, ये स्वरूपावतार रूप से प्रसिद्ध हैं। परशुराम, सनत्कुमार, नारद और कपिल, चार शाक्यांशावतार हैं। इनके मत में ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान और सर्वनियन्ता होता है। यहाँ ''यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते'' (तैत्तिरीयोपनिषद्), ''यः सर्वज्ञ सर्वाविद्'' इत्यादि श्रुतियाँ ब्रह्म के सर्वज्ञत्व

में प्रमाण है, ऐसा ये स्वीकार करते हैं। इनके मत में अक्षर, ईश्वर, जीव और जगत् चार रूप से ब्रह्म पूर्ण है।

16.4 मध्वाचार्य का द्वैत वेदान्त दर्शन-

मध्वाचार्य की दार्शनिक चिन्तन पद्धति द्वैतदर्शन प्रसिद्ध है। द्वैतवेदान्त दर्शन में परमात्मा स्वतन्त्र तत्व है। उसके अधीन जीव जड़ पदार्थ अस्वतन्त्र हैं। इस प्रकार जीव अथवा जड़ प्रपञ्च तत्वतः परमात्मा से भिन्न होता है। भेद ही सत्य है, ऐसा इस दर्शन का परमार्थ है। यही द्वैतदर्शन स्वतन्त्र और अस्वतन्त्र दो प्रकार से विभक्त होकर प्रवर्तित होता है। स्वतन्त्र तत्व भगवान विष्णु ही है। अस्वतन्त्र तत्व भावाभाव मुख से पुनः दो प्रकार का विभाजित है। वहाँ भाव पदार्थ चेतन, अभाव पदार्थ अचेतन प्रपञ्च है, ऐसा पदार्थ-विभाग होता है। उक्त है-

> **''स्वतन्त्रम् अस्वतन्त्रं च द्विविधं तत्वमिष्यते।**
> **स्वतन्त्रे भगवान् विष्णुः भावाभावौ द्विधोरत्॥'' (तत्वसंख्यान, श्लोक)**

द्वैतवेदान्त दर्शन का सार इस प्रकार है। यथा-

1) श्रीमन् नारायण ही सर्वोत्तम हैं।

2) जगत् परमार्थतः सत्य है।

3) जीव परमात्मा से भिन्न है।

4) सभी जीव भगवान के दास हैं।

5) जीवों में परस्पर तारतम्य नित्य है।

6) भक्ति ही मोक्ष का उपाय है।

द्वैतवेदान्त दर्शन में भेद पारमार्थिक रूप में निरूपित है। भेद का नाम उससे इतर विलक्षण पदार्थ का स्वरूपत्व है। और वह पाँच प्रकार का भेद सभी अवस्थाओं में नित्य रूप से होता हे। उसमें जीव-ईश्वर का भेद, जीव-अजीव का भेद, जड़-जीव का भेद, जड़-ईश्वर का भेद, जड़-जड़ का भेद, ये भेद के पाँच प्रकार हैं। ये पाँच भेद सभी अवस्थाओं में नित्य हैं। इन भेदों में जीव-ईश्वर का भेद ही मुख्य होता है। अतः यह जीव-ईश्वर का भेद ही द्वैत दर्शन का मुख्य प्रमेय है, ऐसा परिगणित होता है।

16.4.1 प्रपञ्च सत्यत्व विचार

द्वैतमत में मुक्ति में भी जीव का तारतम्य और अस्वातन्त्रय अंगीकृत है। प्रपञ्च सृष्टि भगवान का लीलाकार्य है, ऐसा माध्वसिद्धान्त है। अतः तीनों कालों में भी प्रपञ्च सत्य,

टिप्पणी

विष्णु के वश में स्थित कहा जाता है। प्रलयकाल में भी प्रपञ्च तात्विक रूप से जीन नहीं होता है। किन्तु कार्यरूप ब्रह्माण्ड विष्णु में सूक्ष्मरूप से अवस्थित होता है, ऐसा सिद्धान्तसार है।

16.4.2 प्रमाण विचार

प्रमेय के स्वरूप-बोध के लिए प्रमाण दार्शनिकों के द्वारा निरूपित हैं। जिनके द्वारा यथार्थवस्तु-स्वरूप गृहण होता है, वह प्रमाण होता है। और वह प्रमाण प्रधान रूप से दो प्रकार से विभक्त है। केवल प्रमाण और अनुप्रमाण। प्रमेय का यथार्थ विज्ञान ही केवल प्रमाण कहलाता है। ज्ञान के साधन इन्द्रियाँ, युक्ति और आगम अनुमान प्रमाण व्यवहृत है। यह प्रत्यक्ष-अनुमान और आगम पुनः तीन प्रकार से अनुप्रमाण विभाजित है। उसमें दोष रहित इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष ही प्रत्यक्ष है। दोष रहित युक्ति ही अनुमान कही जाती है। अनुमान स्वार्थ और परार्थ दो प्रकार से विभक्त है। परोपदेश (अन्य को उपदेश) की अनपेक्षा करके ही विषय के अवबोध के लिए की गई युक्ति-अनुमान ही स्वार्थानुमान कही जा सकती है। अन्य को बोध कराने हेतु प्रयुक्त युक्ति परार्थानुमान प्रसिद्ध है। परार्थानुमान में पाँच अवयव हो, ऐसा न्यायविद् कहते हैं। किन्तु पञ्च अवयव भी नियमपूर्वक परार्थानुमान प्रयोजक हैं, ऐसा द्वैत विदान्त की प्रक्रिया में स्वीकार नहीं किया जाता है।

निर्दुष्ट वाक्य आगम रूप में व्यपदिष्ट है। आकांक्षा-योग्यता-सन्निधि सहित पदसमूह ही वाक्य के रूप में कहा गया है। यह वाक्य पौरूषेय और अपौरूषेय रूप से दो प्रकार का विभक्त है। ऋषियों के द्वारा योग बुद्धि से साक्षात्कृत शब्द राशि अपौरूषेय आगम होता है। पुरूष-बुद्धि द्वारा विरचित वाक्य पौरूषेय आगम कहलाते हैं। इस प्रकार द्वैतवेदान्त अनुगुण ज्ञेय-पदार्थो की यथार्थ-ज्ञानोत्पत्ति में तीन प्रमाण होते हैं।

16.4.3 विष्णु तत्व

द्वैतवेदान्त सम्प्रदाय में विष्णु का ही सर्वोत्तमत्व स्वीकार किया जाता है। सभी आगमों का विष्णुतत्व में ही महत् तात्पर्य है। विष्णु ही ब्रह्म शब्द से कहा जाता है। वही सर्वाधिक, अखिल दोष वर्जित, सकल कल्याण गुणपूर्ण, सर्वेश्वर, इस प्रकार से उपवर्णित है। विष्णु ही मोक्ष के प्रति भी कारण है। इस सम्प्रदाय में विष्णु का जगत् का निमित्त कारणत्व स्वीकृत है। लक्ष्मी जगत् की उपादान कारण है। यह लक्ष्मी विष्णु के अधीन है। लक्ष्मी विष्णु के संकल्पानुसार जड़ प्रकृति के सृष्टि-स्थिति-लय कार्यो में सहकारी होती है। इस प्रकार लक्ष्मी तत्व स्वयं में संस्थापित करके विष्णु जीव-जड़ पदार्थो का अन्तर्यामी होते है, ऐसा सिद्धान्त है।

16.4.4 जीव-स्वरूप

द्वैतदर्शन के अनुसार भगवान नारायण से भिन्न सूक्ष्म चेतन ही जीव है। सकलगुण युक्त जीव होते हैं। किन्तु वे गुण सभी जीवों में स्फुट अभिव्यक्त नहीं होते हैं। भगवान के यथार्थ ज्ञान के अभाव से जीव इस लौकिक संसार में जनन-मरण के चक्र में गिरता है। लिङ्ग शरीरान्तः स्थित चिदानन्दमय जीव होता है। यह जीवगण तारतम्य विशिष्ट सिद्धान्त है। सात्विक-राजसिक-तामसिक के भेद से जीव तीन प्रकार से विभक्त है। देव आदि का अन्तर्भाव सात्विक जीवगण में होता हे। ये स्वरूप से ही विष्णु भक्त होते हैं, कालक्रम से वैकुण्ठ को प्राप्त करते हैं। मनुष्य राजसी जीवगण में अन्तर्निहित होते हैं। ये स्वभावानुसार भू-स्वर्ग-नरक लोकों में सञ्चरण कर नित्य संसारी होते हैं। अध र्म-मार्ग में प्रवृत्त मनुष्य और राक्षसों का तामस जीवगण में अन्तर्भाव होता है। ये सभी जीव प्रकृति सम्बन्ध से बद्ध होते हैं। राग, द्वेष आदि के संसर्ग से विषय भोग में प्रवृत्त होते हैं। अस्वातन्त्रय, अनेकत्व और अणु रूपतव जीव का लक्षण है, ऐसी माध्व वेदान्त की प्रक्रिया है।

16.4.5 मोक्ष-साधन

बद्ध जीव अपने स्वरूप की अवगति के प्रति मोक्ष-साधनों में रत्न करते हैं। द्वैत मतानुसार चार मोक्ष के साधन होते हैं। विषय वैराग्य, सत्कर्माचरण, ब्रह्मविचार ओर भगवत्भक्ति। विषय सुख के अनुभूत करके, उसके अनित्यत्व और असुखत्व को जानकार उसमें विरक्ति ही विषय वैराग्य कहा जाता है। शास्त्रेक्त प्रकार से नित्य-नैमित्तिक कर्मों का आचरण मोक्ष साधन होता है। शास्त्र चिन्तन, और श्रवण-मन-निदिध्यासन ब्रह्मविचार रूप मोक्ष-साधन होते हैं। भगवान की अनुग्रह-प्राप्ति के लिये उस परमेश्वर में अविच्छिन्न प्रीति ही भक्ति कहलाती है। भक्ति के द्वारा ही नारायण सम्प्रीत होते हैं। अतः भक्ति ही मुक्ति का परम साधन है। और वह भक्ति ज्ञानपूर्विका हो। नारायण ही सर्वोत्तम है, ऐसी भगवान में सुदृढ़ प्रीति होती है, वह भक्ति शब्द से कही जाती है। श्रवण, मनन आदि द्वारा सम्पन्न ज्ञान भगवान् में भक्ति को उत्पन्न करता है। अतः नैजसुखानुभूति रूप मुक्ति के लिए शुद्ध भक्ति ही परम उपाय है, ऐसा द्वैतवेदान्त दर्शन का सिद्धान्त है।

16.4.6 मुक्ति स्वरूप

अन्यथा स्थिति को छोड़कर स्वरूप स्थिति की प्राप्ति ही मुक्ति है। जीव अपने स्वरूप-ज्ञान को भूलकर संसारासक्त (संसार से आसक्त) होकर दुःख का अनुभव करता है। उसमें अविद्या ही बन्ध का कारण है। उस अविद्या से निवृत्त होकर जीव के स्वरूपानन्द का आविर्भाव होता है। अतः मुक्ति निजसुखानुभूति ही है। और वह मुक्ति चार प्रकार से विभक्त है। भगवान की सन्निधि में ही उसके अवच्छिन्न दर्शन को ही सालोक्य मुक्ति, ऐसा व्यपदेश किया गया है। उपासना आदि द्वारा भगवान के सन्निकृष्ट देश की प्राप्ति

टिप्पणी

ही सामीप्य मुक्ति कही जाती है। भगवान के ही शंख, चक्र आदि के सहित तत्व को सारूप्य-मुक्ति कहते हैं। भगवान नारायण में ही आश्रयपूर्वक आनन्द का अनुभव सायुज्य मुक्ति है, ऐसा उपदिष्ट है।

16.5 श्रीकण्ठाचार्य का शैवविशिष्टाद्वैत दर्शन

आचार्य श्रीकण्ठ ने ब्रह्मसूत्र के ऊपर एक भाष्य की रचना की। यह भाष्य श्रीकण्ठ भाष्य के नाम से प्रसिद्ध है। इस भाष्य में प्रतिपादित मतवाद शैवविशिष्टाद्वैतवाद कहलाता है।

16.5.1 ब्रह्म का स्वरूप

जगत का जन्म, स्थिति, प्रलय का आवरण (जीव की नित्यसिद्ध ज्ञान, क्रिया और शक्ति का आवरणरूप बन्धन) और अनुग्रह (मुक्ति-प्रदान) पञ्चकृत्य जिससे उत्पन्न हुए, और जो चिदचित्प्रपञ्चाकार से परिणामी परमशक्ति विशिष्ट, और सभी शास्त्रों का तात्पर्य विषयी भूत, भव, शिव आदि से प्रकाशित, और सर्वकलङ्ग रहित निरतिशय ज्ञानानन्द महिमा से युक्त, उस प्रकार का शिव तत्व ही पर ब्रह्म है। इस दर्शन में उस शिव तत्व ब्रह्म के अनेक नाम हैं। उनमें प्रसिद्ध हैं-

1) सभी जगत सदा विराजमान होने के कारण यह भव कहलाते हैं।

2) सभी के संहारक होने से यह शर्व माने जाते हैं।

3) निरूपाधिक परमैश्वर्य विशिष्ट होने से यह ईशान कहलाते हैं।

4) ब्रह्म आदि स्थावरान्त, चेतन, अचेतन के स्वामी होने ये यह पशुपति कहलाते हैं।

5) संसार-ताप के दाहक होने से यह रूद्र कहे जाते हैं।

6) नियामक रूप से सभी चेतन के भय का हेतु होने से यह भीम कहलाते हैं।

7) स्वमहिमा से ही प्रकाशित होने से यह महादेव रूप में वर्णित हैं।

8) अशेष कल्याण गुणयुक्त होने से यह शिव कहलाते हैं।

9) अखिल जगत के शासक होने से यह परमेश्वर कहलाते हैं।

10) सुख स्वरूप होने के कारण यह शम्भु के रूप में अभिधेय हैं।

16.5.2 जगत का स्वरूप

चित्-अचित् प्रपञ्चाकार परम शक्ति विशिष्ट परमेश्वर इस जगत के अभिन्न निमित्त-उपादान

टिप्पणी

कारण हैं। परमेश्वर चित् तत्व और अचित् तत्व को स्वयं से विभक्त करके प्रपञ्चाकार रूप में परिणत हुए। परमेश्वर का चित् तत्व साक्षात् प्रपञ्चरूप में परिणत है। इस चित् तत्व का अपर नाम चिदम्बर और चिदाकाश है। चिदाकाश परमेश्वर का शरीरभूत होता है। 'आकाशशरीरं ब्रह्म'' (तैत्तिरीयोपनिषद् 1/6/2), ''आकाशः ह वै नामरूपयोः निर्वहिता'' (छान्दोग्योपनिषद् - 8/14/1) आदि श्रुतियाँ यहाँ प्रमाण रूप हैं ऐसा शैवविशिष्टाद्वैतवादी कहते हैं। इस चित्-शक्ति का नाम है- प्रज्ञा, ज्ञानशक्ति, परम प्रकृति, माया, महामाया, पराशक्ति, परमसत्ता, परमाकाश, उमा, अम्बिका इत्यादि। यह चित्-शक्ति इच्छात्मिका, ज्ञानात्मिका और क्रियात्मिका होती है। परमेश्वर के अधिष्ठित अव्यक्त से आकाश, आकाश विशिष्ट परमेश्वर से वायु, आकाश, वायु विशिष्ट परमेश्वर से तेज, आकाश, वायु तेज विशिष्ट परमेश्वर से जल, आकाश, वायु, तेज, जल विशिष्ट परमेश्वर से पृथिवी उत्पन्न होती है।

16.5.3 जीव का स्वरूप

अनादि काल से अज्ञान से उत्पन्न संस्कारों के द्वारा विधीत विचित्र कर्म-फल के भोगानुकूल देवता, तिर्यग आदि शरीरों में प्रवेश, जन्म और मृत्यु के अधीन, अनन्त ताप को सहन करने वाला और शिव प्रसाद द्वारा प्राप्त शिवसम, नितिशय और ज्ञानानन्दस्वरूप जीव होता है। मुक्ति की दशा में परमेश्वरापन्न नित्य जीव बाह्य करण से निरपेक्ष होकर मन से निरतिशय स्वरूपानन्द को अनुभव करता है। जीव अणुरूप और परमेश्वर का अंशविशेष है।

16.5.4 मोक्ष का स्वरूप और मोक्षोपाय

इस शैवविशिष्टाद्वैत दर्शन में यद्यपि, जीव शिव रूप परब्रह्म से भिन्न है तथपि ''अहं ब्रह्मास्मि'', और ''शिवोऽमस्मि'', इस प्रकार शिव से भेद भावना द्वारा पशु भाव में निवृत्ति होने पर ''अहं नित्यः निरतिशयः आनन्दस्वरूपः साक्षिस्वरूप निष्कलन्नः शिवः अस्मि'', इस प्रकार सगुणब्रह्मरूपशिवत्व-प्राप्ति ही मुक्ति है। इस मत में ज्ञान-कर्म का समुच्चय ही मोक्ष के प्रति साधन है। ज्ञान-कर्म का समुच्चय, यहाँ ज्ञान उपासना और निदिध्यासन है।

16.6 श्रीपति का वीरशैवविशिष्टाद्वैत दर्शन

वीरशैवविशिष्टाद्वैत शक्तिविशिष्टद्वैत और विशेषाद्वैत प्रसिद्ध है। यह दर्शन भारतीय शैव दर्शन परम्परा में विशिष्ट स्थान रखते हैं। श्रीपति पण्डित प्रवर द्वारा विरचित श्रीकर ब्रह्मसूत्र भाष्य द्वारा यह दर्शन चौदहवीं शताब्दी में प्रवर्धित है। शक्ति विशिष्टाद्वैत प्राधान्यरूप से तीन पदार्थों को वर्णित करते हैं। पति, पशु और पाश पदार्थ हैं। इस सिद्धान्त में परम

ब्रह्म ही पति शब्द का वाच्य होता है। चिदचिदविशिष्ट पति इस दर्शन का सार है। पशु शब्द का वाच्य जीव शिव का अंश होता है। शक्ति विशिष्ट जगत् ही पाश शब्द द्वारा कहा जाता है। वह यह जगत् परमार्थत: सत्य है। शिवांश जीव मुक्तिकाल में शिव सायुज्य को प्राप्त करता है, ऐसा इस दर्शन का परम तात्पर्य है। इस दर्शन में शिव-शक्ति, जीव-ईश्वर और भेदाभेद (द्वैताद्वैत) स्वीकृत हैं। यह जीव-ईश्वर का भेदाभेद काल्पनिक नहीं है किन्तु पारमार्थिक ही है।

16.6.1 पशु, पति, पाश का स्वरूप

इस वीरशैवदर्शन में पशु शब्द द्वारा जीव अभिधेय है। यह जीव शिव का अंश, और परमात्मा का शक्ति विशिष्ट होता है, ऐसा सिद्धान्त का आशय है। वीरशैवदर्शन में पति पर ब्रह्म होता है। एकमेवाद्वितीय सच्चिदानन्द शिव तत्व ही परम ब्रह्म रूप में अभिधेय होता है। यही शिव-तत्व सभी के सृष्टि-स्थिति-प्रलय का कारण है, ऐसा कहते हैं। इसमें ''भुवनानि इति शिव:', इस व्युत्पत्ति से सकल लोकों का आश्रय शिव तत्व जाना जाता है। यही पर शिव तत्व शिवागम लिङ्ग शब्द द्वारा व्यपदिष्ट हैं। परमात्मा के सच्चिदानन्द स्वरूप का स्फुरण ही विमर्श शक्ति है। परमात्मा विमर्श शक्ति के द्वारा ही जगत् के सृष्टि-स्थिति-लय का कारण होता है। यह विमर्श शक्ति सभी पदार्थों में व्याप्त होती है। अत: सम्पूर्ण जगत् जैसे शिवमय है वैसे शक्ति विशिष्ट भी होता है, ऐसा शक्ति विशिष्टाद्वैती कहते हैं। कार्य रूप जगत् ही पाश शब्द से इस दर्शन में अभिहित है। पाश शक्ति विशिष्ट परमात्मा का परिणामरूप होता है। इस विशिष्टाद्वैत दर्शन में जगत सत्यत्व द्वारा ही जाना जाता है। 'स्वर्ण कुण्डल', यहाँ उपादान कारण स्वर्ण तत्वत: नाश के बिना भिन्न कुण्डल उत्पन्न होता है। वहाँ स्वर्ण का कुण्डल रूप में परिणाम अविकृत परिणाम कहा जाता है। इस प्रकार ही परमात्मा स्वयं की शक्ति के अंश से जगत का उपादान कारण और स्वयं के अंश से निमित्त कारण होता है। अत: वीरशैवदर्शन में जगत् रूप कार्य के प्रति शिव का अभिन्न निमित्त-उपादान कारणत्व स्वीकृत है। यह जगत् शक्ति विशिष्ट ब्रह्म-परिणाम है। अत: जगत् भी शक्ति विशिष्ट ही होगा। शक्ति रहित कोई पदार्थ नहीं रहता है। पाश रूप यह जगत सत्य ही है, मिथ्या नहीं, ऐसा वीरशैव दर्शन का सार है।

16.6.2 प्रमाण-स्वरूप

वीरशैवदर्शन में तीन प्रमाण स्वीकार किये जाते हैं। प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम, तीन प्रमाण हैं। संशय और विपरीत ज्ञान से रहित ज्ञान शक्ति ही प्रत्यक्ष कही जाती है। दृढ़व्याप्ति ज्ञान द्वारा परोक्ष अर्थ का अवबोधक प्रमाण ही अनुमान कहलाता है। वेद, शैवागम और आप्त वाक्य आगम प्रमाण के रूप में स्वीकार होते हैं।

16.6.3 मोक्ष का स्वरूप

वीरशैवदर्शन के अनुसार पर ब्रह्म लिङ्ग और अङ्ग रूप में भासता है। अङ्ग का अर्थ जीवात्मा और लिङ्गत्व से परशिव ही कहे जाते हैं। लिङ्गगत शक्ति अङ्गरूप जीवात्मा में भक्ति रूप में रहती है। शक्ति-भक्ति का एकत्व ही लिङ्ग-अङ्ग सायुज्य रूप में व्यवहृत है। लिङ्ग-अङ्ग रूप शिव-जीव का सायुज्य ही वीरशैव दर्शन में मोक्ष कहा गया है।

पाठगत प्रश्न 16.1

1. विशिष्टाद्वैत दर्शन में कितने प्रमाण स्वीकार किये जाते हैं?
2. विशिष्टाद्वैत दर्शन में भक्ति क्या है?
3. विशिष्टाद्वैत दर्शन में प्रपत्ति क्या है?
4. विशिष्टाद्वैत में तीन सत्य क्या है?
5. विशिष्टाद्वैत दर्शन में भगवान् किस प्रकार के होते हैं?
6. विशिष्टाद्वैत दर्शन में जीव के कितने भेद हैं?
7. विशिष्टाद्वैत दर्शन में प्रत्यक्ष क्या है?
8. द्वैताद्वैतवाद के प्रवर्तक कौन हैं?
9. द्वैताद्वैतवाद में प्रधान रूप से कितने अवतार हैं और वे क्या हैं?
10. विशिष्टाद्वैत दर्शन में मुक्ति क्या है?
11. शैवविशिष्टाद्वैत दर्शन में जीव कैसा होता है?
12. वीरशैव दर्शन में पति क्या है?
13. वीरशैव दर्शन में प्रमाण कितने हैं?
14. वीरशैव दर्शन का सार क्या है?
15. वीरशैवदर्शन में पर ब्रह्म कैसा होता है?
16. द्वैतवेदान्त दर्शन में स्वतन्त्र कौन होता है?
17. द्वैतवेदान्त दर्शन का परमार्थ क्या है?

टिप्पणी

विशिष्टाद्वैत वेदान्त में विशेष रूप से तत्वत्रय विचार विहित है। चित् (जीव), अचित् (प्रकृति/जगत्) और चित्-अचित् विशिष्ट ईश्वर (ब्रह्म) तत्वत्रय हैं। वहाँ शेषत्व से चिदिचित् तत्वों का परमात्मा में आश्रय है। परमात्मा से चित्-अचित् तत्वों का अपृथक्भूत सम्बन्ध स्वीकार किया जाता है। यह तत्वत्रय भी सत्य रूप है।

द्वैताद्वैत दर्शन में जीव कर्ता, भोक्ता, नित्य चैतन्य-स्वरूप, अणुपरिमाण और ज्ञान स्वरूप है। जीव ब्रह्म के अंश विशेष रूप है, ये स्वीकार करते हैं। जीव का चित् रूपता का विस्मरण ही अविद्या है, ऐसा इनका सिद्धान्त है। द्वैताद्वैतदर्शन में जीव का चिदात्मा में अवस्थान ही मुक्ति है। प्रारब्ध कर्म का भोग से ही क्षय होता है। जीव मुक्त अवस्था में भी ब्रह्म के अंश रूप में रहता है।

द्वैतवेदान्त दर्शन में परमात्मा स्वतन्त्र होता है। उसके अधीन जीव, जड़ पदार्थ अस्वतन्त्र होते हैं। इस प्रकार जीव अथवा जड़ प्रपञ्च तत्व अथवा परमात्मा से भिन्न हैं। भेद ही सत्य है, ऐसा इस दर्शन का परमार्थ है। स्वतन्त्र और अस्वतन्त्र, ऐसे दो प्रकार से विभक्त होकर द्वैतदर्शन प्रवर्तित है। स्वतन्त्र तत्व भगवान् विष्णु ही हैं। शैवविशिष्टाद्वैत दर्शन में शिवतत्व ही पर ब्रह्म है। चिदचित्प्रपञ्चाकार परम शक्ति विशिष्ट परमेश्वर इस जगत का अभिन्न निमित्त-उपादान कारण है। चिदाकाश परमेश्वर का शरीरभूत होता है। मुक्ति की दशा में परमेश्वरापन्न नित्य जीव बाह्यकरण निरपेक्ष होते हुए मन से निरतिशय स्वरूपानन्द का अनुभव करता है। ''अहं नित्यः निरतिशयः आनन्दरूपः साक्षिरूप, निष्कलन्नः शिवः अस्मि'', इस प्रकार ही सगुण ब्रह्मरूप शिवत्व की प्राप्ति ही मुक्ति है। इस मत में ज्ञान-कर्म का समुच्चय मोक्ष के प्रति साधन है।

वीरशैवविशिष्टाद्वैत दर्शन प्रधान रूप से तीन पदार्थों का वर्णन करता है। पति, पशु और पाश पदार्थ हैं। इस सिद्धान्त में पर ब्रह्म ही पति शब्द का वाच्य है। चिदचिद्विशिष्ट पति, ऐसा दर्शन का सार है। पशु शब्द का वाच्य जीव शिव का अंश होता है। शक्ति विशिष्ट जगत् ही पाश शब्द द्वारा कहा जाता है। वह यह जगत् परमार्थतः सत्य है। शिवांश जीव मुक्ति के काल में शिव-सायुज्य को प्राप्त करता है, ऐसा इस दर्शन का परम तात्पर्य है। इस दर्शन में शिव-शक्ति, और जीव-ईश्वर का भेदाभेद (द्वैताद्वैत) स्वीकृत है। यह जीव-ईश्वर का भेद काल्पनिक नहीं है किन्तु पारमार्थिक ही होता है।

पाठ में आये हुए विषय

- विशिष्टाद्वैत दर्शन में ब्रह्म, जीव और जगत् तीनों सत्य होते हैं।
- विशिष्टाद्वैत दर्शन में भगवत् कृपा से ही मुक्ति होती है।
- सिद्धोपाय और साध्योपाय, विशिष्टाद्वैत दर्शन में दो प्रकार के मोक्षोपाय है
- ईश्वर चित्-अचित् विशिष्ट है, यह रामानुज दर्शन का मत है।
- जगत् और जीव परमात्मा के शरीरभूत है, यह विशिष्टाद्वैत दर्शन का सिद्धान्त है।
- प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द, ये तीन प्रमाण विशिष्टाद्वैतवादी स्वीकार करते हैं।

टिप्पणी

- विशिष्टाद्वैतवादी सत्ख्यातिवादी होते हैं।
- द्वैताद्वैतवाद में ईश्वर स्वाभाविक गुण शक्ति आदि से युक्त, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान होता है।
- द्वैताद्वैतवाद में जीव की चित्-रूपता का विस्मरण ही अविद्या है।
- द्वैताद्वैतवाद में जीव-ब्रह्म का भेदाभेद जल-तरंग के समान है।
- द्वैताद्वैतवाद में प्राधान्य रूप से तीन अवतार हैं।
- वीरशैव दर्शन में अङ्ग को जीवात्मा और लिङ्ग से परशिव ही कहे जाते हैं।
- पाशरूप यह जगत् सत्य ही है, मिथ्या नहीं, ऐसा वीरशैवदर्शन का सार है।
- वीरशैवदर्शन में पति परम ब्रह्म ही होता है।
- वीरशैवदर्शन में एकमेवद्वितीय सच्चिदानन्द शिवतत्व ही परम ब्रह्म के रूप में जाना जाता है।
- शिवविशिष्टाद्वैत दर्शन में शिवतत्व ही परम ब्रह्म है।
- शिवविशिष्टाद्वैत दर्शन में 'अहं नितय: निरतिशय: आनन्दस्वरूप: साक्षिस्वरूप: निष्कलय: शिव: अस्मि'', इस प्रकार सगुण ब्रह्मरूप शिवत्व ही प्राप्ति ही मुक्ति है।
- द्वैतवेदान्त दर्शन में जीव अथवा जड़ प्रपञ्च तत्व अथवा परमात्मा से भिन्न है।
- द्वैतवेदान्त दर्शन में भेद ही सत्य है, ऐसा इस दर्शन का परमार्थ है।

1. विशिष्टाद्वैत दर्शन में मोक्ष का स्वरूप क्या है?
2. विशिष्टाद्वैत दर्शन में प्रत्यक्ष का स्वरूप क्या है?
3. विशिष्टाद्वैत दर्शन में बन्ध का स्वरूप लिखिए।
4. सिद्धोपाय और साध्योपाय, इसके आधार पर विशिष्टाद्वैतदर्शन की दिशा व्याख्यायित कीजिए।
5. ईश्वर-स्वरूप के आधार पर विशिष्टाद्वैत दर्शन की आलोचना कीजिए।
6. भक्ति का स्वरूप, विशिष्टाद्वैत दर्शन के आधार पर प्रतिपादित कीजिए।
7. विशिष्टाद्वैत दर्शन के अनुसार शब्द प्रमाण का वर्णन कीजिए।
8. विशिष्टाद्वैत दर्शन के आधार पर यथार्थ ख्याति की आलोचना कीजिए।
9. द्वैताद्वैतवाद में कितने अवतार हैं और वे कौन से हैं?

टिप्पणी

10. द्वैताद्वैतवाद के अनुसार अविद्या क्या है?
11. द्वैताद्वैतवाद के अनुसार गुणावतार कौन होते हैं?
12. द्वैताद्वैतवाद के अनुसार भगवान् किस प्रकार के होते हैं?
13. द्वैताद्वैतवाद के अनुसार जीव किस प्रकार का होता है?
14. वीर शैव दर्शन के आधार पर प्रमाण की आलोचना कीजिए।
15. वीरशैवदर्शन के आधार पर जीव का स्वरूप प्रतिपादित कीजिए।
16. वीरशैव दर्शन के आधार पर पति, पशु, पाश का स्वरूप वर्णित कीजिए।
17. शैवविशिष्टाद्वैत वेदान्त में मुक्ति क्या है?
18. द्वैतवेदान्त दर्शन के आधार पर जीव का स्वरूप प्रतिपादित कीजिए।
19. शैवविशिष्टाद्वैत वेदान्त में जगत का स्वरूप क्या है?
20. द्वैतवेदान्त दर्शन के अनुसार मोक्ष का स्वरूप वर्णित कीजिए।

पाठागत प्रश्नों के उत्तर

1. प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द, ये तीन प्रमाण हैं।
2. प्रीतिरूप धी भक्ति है।
3. प्रपत्ति का नाम शरणागति है।
4. ब्रह्म, जीव और जगत्, ये तीनों सत्य हैं।
5. भगवान् चित्-अचित् विशिष्ट होता है।
6. जीव तीन प्रकार का है- बद्ध, मुक्त और नित्य।
7. साक्षात्कारि प्रमा का करण प्रत्यक्ष है।
8. द्वैताद्वैतवाद के प्रवर्तक निम्बार्काचार्य हैं।
9. गुणावतार, पुरूषावतार और लीलावतार।
10. 'अहं नित्य निरतिशय: आनन्दस्वरूप: साक्षिस्वरूप: निष्कलन्न: शिव: अस्मि', यही सगुण ब्रह्मरूप शिवत्वप्राप्ति ही मोक्ष (मुक्ति) है।
11. जीव नित्य, अणुरूप होता है।
12. वीरशैवदर्शन में पति परम ब्रह्म होता है।

13. तीन प्रमाण हैं। प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम।
14. पाशरूप यह जगत् सत्य ही है, मिथ्या नहीं, ऐसा वीरशैवदर्शन का सार है।
15. वीरशैवदर्शन में एकमेवाद्वितीय सच्चिदानन्द शिवतत्व ही ब्रह्म रूप से कहा गया है।
16. द्वैतवेदान्त दर्शन में स्वतन्त्र भगवान विष्णु ही हैं।
17. ब्रह्म, जीव और जड़ जगत् का परस्पर भेद ही सत्य है, यह ही इस द्वैतवेदान्त दर्शन का परमार्थ है।

॥सोलहवाँ पाठ समाप्त॥